कहानी 'पूस की रात'

हिन्दी कहानीकार मुंशी प्रेमचन्द जी ने 'पूस की रात' कहानी को सन् 1930 में माधुरी में प्रकाशित कराया था। तात्पर्य यह है कि तब तक प्रेमचन्द का यथार्थवादी दृष्टिकोण पूर्ण रूप में स्पष्ट हो गया था। इससे यथार्थवादिता की प्रेरणा तीव्रतम हुई है। इस समय तक प्रेमचन्द के सामने से कोरा आदर्शवाद जो वो 'सप्तसरोज' में लेकर चले थे तथा जिसका निर्वाह आंशिक रूप में 'पांच–फूल' कि किया था– अपना खोखला रूप दिखाकर हट गया था।[1] प्रेमचन्द स्वयं स्वीकार करते है कि वे यथार्थवादी कदापि न थे यथार्थवादी उस अर्थ में जिस अर्थ में प्रगतिवादी उन्हें रखने का प्रयत्न करते हैं। ''मैं यथार्थवादी नहीं हूं''। कहानी में वस्तु ज्यों की त्यों (जैसी थी वैसी) रखी जाये तो वह जीवन चरित्र हो जायेगी।[2] प्रेमचन्द ने अपने हिन्दी साहित्य जीवन में जो कहानियां लिखकर समाज के समाने प्रस्तुत की थी। क्या वो 'पूस की रात' कहानी में जो पात्र है? क्या मुंशी जी अपने ऐनक को ढंग से लगार उस गांव के किसान हीन था भूमिधर किसानों को अपनी नेत्र ज्योति से सही प्रकार से देख चुके थे। अगर ऐसा सही है तो वो यथार्थवादी थे। जिसका अर्थ है, समाज में जो बुराईयां थी वो ठीक हो सकती है। अगर ऐसा न था तो वो किसी प्रकार से भी यथार्थवादी न हो सकते थे और जैसा कि स्वयं प्रेमचन्द ने ऊपर स्वीकार किया है कि मैं यथार्थवादी नहीं हूं, तो पूस की रात कहानी को एक प्रकार से काल्पनिक रूप में या प्रतीक रूप में मानकर उस समाज की आर्थिक, सामाजिक स्थिति को ससमझा जा सकता है। जिस समाज की प्रेमचन्द ने अपनी जादू की कलम से लिखकर कल्पना की थी।

---

1. सुरेन्द्र आनन्द–प्रेमचन्द कहानीकार, पृ0 197
2. सुरेन्द्र आनन्द–प्रेमचन्द कहानीकार, पृ0 175

'पूस की रात' कहानी एक प्रकार से मानव के आर्थिक शोषण और समाज की व्यवस्था पर व्यंग के रूप में लिखी है और प्रेमचन्द जी अपनी स्वयं की काल्पनिक विचारधाराओं का एक नया मोड़ भी है। वस्तुतः मुंशी जी को गरीबी–शोषण और पूस की रात की ठन्डक का अनुभव था? प्रेमचन्द जी सन् 1930 ''माधुरी'' सम्पादन के साथ–साथ जनवरी में सरस्वती प्रेस बनारस से 'हंस' का सम्पादन आरम्भ किया। नये लेखकों को प्रोत्साहन देने की नीति को 'हंस' ने आरम्भ से ही अपनाया । उन दिनों प्रेमचन्द 'गबन' लिख रहे थे। जो सन् 1931 में अपने ही प्रेस से प्रकाशित किया। उसका अनुवाद लाहौर से प्रकाशित हुआ है।[1]

मुंशी प्रेमचन्द जुलाई सन् 1929 से नवम्बर सन् 1931 तक वे नवल किशोर प्रेस में प्रेस के विनिन्न कार्य करते रहे।[2] मगर मुंशी विशन नारायण की अकाल मौत के कारण नवम्बर सन् 1931 में प्रेमचन्द का नवल किशोर प्रेस से सम्बन्ध–विच्छेद हो गया। मगर आपके लड़के लखनऊ में पढ़ रहे थे, इस लिए अप्रेल सन् 1933 तक आपको भी वहीं रहना पड़ा। इसके बाद वे बनारस चले आये और एक साल अर्थात मई सन् 1935 तक अपने प्रकाशन सरस्वती प्रेस का काम देखते –भालते रहे।[3] मुंशी प्रेमचन्द ने 'पूस की रात' कहानी को जिस रूप में समाज के सामने प्रस्तुत किया है, उस विचार धारा को समझकर ऐसा ही अनुभव होता है कि शहर में सारी जवानी को गुजारने वाला बूढ़ा आदमी। गांव की आबों–हवा का क्या अनुभव अपनी जीवनी के द्वारा प्रस्तुत कर सकता है? गांव के विषय में भाषणबाजी करना और अपनी लकड़ी की कलम से लिख देना तो बहुत आसान है। अर्थात खाली–मूली बिरयानी के पकाव बनाने के बराबर वाली ही कहावत कहलायी जा सकती है। उदाहरणार्थ जमीन और आसान

---

1 . शचीरानी गुर्टू– प्रेमचन्द व्यक्तित्व और कृतित्व, पृ0 17
2 . शचीरानी गुर्टू– प्रेमचन्द व्यक्तित्व और कृतित्व, पृ0 13
3 . वही.पृ013

का अन्तर संसार की प्रकृति है। वैसा ही अन्तर गांव और शहर की व्यवस्था का होता है। इस प्रकार प्रेमचन्द जी गांव में जन्मे और शहर में अपना पूरा जवानी का अनुभव प्राप्त कर सके है।

इस 'पूस की रात' कहानी के जो पात्र है। वो गरीब किसान है, कहानी का आरम्भ महाजन को कुल जमा पूंजी –तीन रूपये दे देने के बाद हल्कू से शुरू होता है। यह तीन रूपये उसकी धर्म पत्नी मुन्नी ने अपने प्रियवर पति हल्कू के लिए एक कम्बल लेने के लिए जमा किये हुये थे, परन्तु सहना अर्थात ठन्ड से बचने के वास्ते, हाथों से अपनी गर्दन छुड़ाने के लिए कम्बल की आशा को महाजन को रूपये देने के बाद उस ठन्डक को समाप्त करना पड़ा। मुन्नी के द्वारा रूपये देने के पश्चात पुनः उसे गत रातों की तरह पूस की – ठंडी रात को अन्धेरे में खेत ताकने के (देखने–रखाने) का कार्य करना पड़ता है। उस ठन्डी रात में उसका साथ झबरा कुत्ता देता है। कल्लू नामक कुत्ता अपने मालिक के खेत में आग लगाने वाले गड़रिये को पकड़ लेता है। पंडित को चोरों के अपने पर जगाता है, बाद में संकेत द्वारा उनका चुराया माल भी वापस प्राप्त करा देता है।[1] यह जानवर एक प्रकार से अपने मालिक का वफादार रहकर अपना पूरा जीवन उसकी रूखी–सुखी रोटियों पर ही काट देता है और अपनी जान पर खेलकर अपने मालिक की जान ओ माल की रखवाली करता है। इसलिए इस जानवर को लोग ह्रदय से प्यार करते हैं। और उसकी पूरी तरह से देख भाल करते हैं।

हल्कू अपनी ठन्ड को दूर करने के लिए उस रात को कई हुक्के की चिलमें पीता है–परन्तु व्यर्थ प्रयत्न, कलान्तर में वह पेड़ों की पत्तियां बटोर कर जमा करके खेत से कुछ दूरी पर स्थित बाग में बैठकर आग से तापता है और यह गर्मी उसे

---

1 . *कमलकिशोर गोयनका–प्रेमचन्द विश्वकोश, पृ0 105*

आलस्य से भर देती है। मानव जीवन में यह स्थिति हर एक के ऊपर आती है। अर्थात यह उम्र का ही तकाजा होता है। जवानी में हर परेशानी को आदमी आसानी से झेल लेता है। गर्मी हो या सर्दी बरसात हो या आंधी वो तो उसके जीवन में एक वस्तु के समान है। ऐसा प्रतीत होता है कि पूस की रात के हल्कू की उम्र इस समय पक्क चुकी है। अर्थात 60–65 साल की आयु में हर प्राणी के शरीर के अंग अपना काम करना समाप्त कर से देते है। यही एक कारण हो सकता है कि हल्कू ऐसी ठन्डक में अपनी जान को पत्तियों का सहारा लेकर खेत के पास आग से अपने शरीर को सेक कर राहत लेना चाहता है। परन्तु इस कहानी के रचियता को तो अपनी कलम का प्रयोग भी तो करना एक अनिवार्य परम कर्तव्य था। क्योंकि इस कायस्थ जाति का तो राजकाज से जुड़ा होने के कारण सारतः गैर–मजहबी होता है। कायस्थों का जीवन–व्यापार, कोर्ट कचहरी, रेवन्यू या अन्य सरकारी नौकरियों में ही बीतता है। मुगलों के जमाने से ही इन लोगों ने अपनी सेवायें राजकीय कार्यों अर्थात लिखाई–पढ़ाई में अर्पित की। वैसे भी कायस्थ बड़ा ही काईयां कहलाता है।[1] 'काजल की मात्रा को घटा–बढ़ाकर रूप को संवारने या बिगाड़ने की कला में मुंशी प्रेमचन्द जी की कल्पना शक्ति की कलम की जादू अपना सानी नहीं रखती। अपने इस पेटेन्ट तरीके को काम में लाकर वह इच्छित, भला अथवा बुरा, प्रभाव पैदा करते हैं।[2] किन्तु कलम के जादूगर पर जब उसकी उम्र उस असहाय हल्कू किसान के लगभग बराबर होती है। मेरी वजाओं कता और शक्लों–शबाहत के मुताल्लिक आपने जो कयास किया है उससे रूहानी ताल्लुक का गुमान और भी पुख्ता हो जाता है। बेशक मेरा सिन चालीस साल (14 जुलाई 1919) है।[3] अर्थात अभी जवानी का दौर चल रहा है। मगर

---

1 . डा0 रामबृक्ष–प्रेमचन्द और भारतीय किसान, पृ015
2 . शचीरानी गुर्टू– प्रेमवन्द व्यक्तित्व और कृतित्व, पृ0 134
3 . अमृतराय–चिट्टी–पत्री, भाग–2, पृ010?

20 साल बाकी है, हल्कू की बराबरी होने में यह समय बम्बई की यात्रा का है। जनवरी सन् 1936 को मुंशी प्रेमचन्द घूमकर सुबह लौटे। नाश्ता करने आये तो हंसकर आप बोले खाने को तो अच्छी से अच्छी चीज़ खाता हूं, मगर शरीर में कुछ बल नहीं मालूम होता । मैं घूमने जाता हूं, तो पैर थके से लगते हैं। आपकी प्रिय–दूसरी धर्म पत्नी श्रीमती शिवरानी देवी जी बोली आखिर ऐसा होता क्यों? मुंशी प्रेमचन्द जी बोले– तुम (शिवरानी देवी) भी अजब आदमी हो। जरा सी बात सुनकर तिल को ताड़ कर दिया। इसी तरह हो जाता है कि मैं (प्रेमचन्द) भी तो अब 60 के पेटे में हूं।[1] अब मुंशी प्रेमचन्द जी की कितनी तेज गति से कलम चल सकती है। यह बात स्वयं प्रेमचन्द के अपने ही तो शब्द है किसी असहाय हल्कू किसान के तो नहीं हैं। इसी कारण से जैनेन्द्र कुमार–कहानी–लेखक के पास उतना विशाल चित्रपट नहीं रहता, जितना उपन्यासकार के पास होता है। इसलिए कहानीकार जीवन को उसकी विविधताओं एवं जटिलताओं के साथ प्रस्तुत करने में असमर्थ है।[2] यथार्थ जगत में किसी व्यक्ति को पूरी तरह जानने के लिए यह आवश्यक है कि हम उसके साथ एक निश्चित समय तक रहे तथा उसे, उसके विभिन्न सम्बन्धों तथा परिस्थितियों के सन्दर्भ में देखें। यथार्थ जगत के व्यक्तियों के विषय में यह जितना सत्य है उतना ही उपन्यास के पात्रों के विषय में भी।[3] अतः जिस पात्र में वर्णगत विशेषताओं की प्रमुखता रहती है, उसे टाईप और जिस में व्यक्ति के क्रमिक विकास तथा अर्न्तमन के उदघाटन को प्रमुखता दी जाती है उसे व्यक्ति पात्र कह सकते हैं।[4] व्यक्ति और टाईप का भेद यथार्थ जगत के मनुष्य का भेद नहीं है, यह भेद कहानीकार और उपन्यासकार ने अपनी घटना प्रस्तुति में कल्पित कर लिया है। व्यक्ति और टाईप के सम्बन्ध में जैनेन्द्र कुमार का यह कथन

---

1 . शिवरानी देवी प्रेमचन्द– प्रेमचन्द घर में– पृ0 248
2 . जैनेन्द्र कुमार साहित्यक का श्रेय और प्रेय, पृ0 15
3 . डा0 रक्षापुरी– प्रेमचन्द साहित्य में व्यक्ति और समाज, पृ0 11
4 . डा0 रक्षापुरी– प्रेमचन्द साहित्य में व्यक्ति और समाज, पृ0 13

बिल्कुल सत्य है कि 'उपन्यास में यदि किसी को टाईप और दूसरे को व्यक्ति कहा जा सकता है तो केवल मुंशी प्रेमचन्द की कलम की खूबी की ही वजह से। यदि वहां से व्यक्ति को स्वयं प्राप्त कर उपलब्ध कराया जायेगा कि जहां से उसके समूचे व्यक्तित्व को ऐक्य मिलता है, तो वह मर्मस्थ होगा। उसी को ऊपरी सतह से दिखाया जायेगा तो वही पात्र चटपटा, निजत्वहीन और टाईप सरीखा दिखाई दे जायेगा।[1] साहित्य की सृष्टि मानव समुदाय को आगे बढ़ाने, उठाने के वास्ते ही तो है।[2] क्योंकि मात्र तथ्य के यथार्थ चित्रण कर देने से जीवन के प्रगति पर कोई अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता। समाज की नग्नता का उदघाटन करने से, समाज के रिसते हुए कोढ़ का पर्दाफाश कर देने से गन्दगी का प्रसार ही होगा—न कि आप उसकी दिशा मोड़ सकेंगे। समाजों में बुराईयां होती है, इसे सभी स्वीकार करते हैं। परन्तु क्या बुराई को और अधिक बुरे रूप में चित्रित करना ही साहित्यकार का उद्देश्य तो नहीं होता है । प्रेमचन्द इस तथ्य को भली—भांति समझते थे। वे नहीं चाहते थे कि चतुरसेन शास्त्री, पहाड़ी एवं निराला जी की तरह नग्न यथार्थवादी कहानियां लिखी जाये वे मानव में घृणा का प्रचार न करना चाहते थे।[3] परन्तु उन्होंने दलित मानव समाज की अपनी कलम से ही लिखकर नग्नता का सबूत हिन्दी जगत में प्रस्तुत किया है। केवल वे ही एक ऐसे कलमबाज जादूगर है जो अछूत—दलित को अपनी कलम की मार से हमेशा मारते ही रहे और अन्त में आप (प्रेमचन्द) अपने आप बकने लगे – 'हे भगवान, मैं आज तुमसे प्रार्थना करता हूं कि मुझे कुछ दिन के लिए अच्छा कर दो'। वे इस तरह की प्रार्थना कर रहे थे और मैं (शिवरानी देवी) चारपाई पर पड़ी—पड़ी रो रही थी। शायद वे (प्रेमचन्द) भी रो रहे थे।[4] जब स्वयं पर विपत्ति आती है, तो दर्द होता है। 'रूमी कहते हैं कि प्रेम का बीमार

1. जैनेन्द्र कुमार—साहित्यक का श्रेय और प्रेय, पृ0 184
2. श्री निवासाचार्य— प्रेमचन्द स्मृति, स.प्र., पृ0 223
3. सुरेन्द्र आनन्द— प्रेमचन्द कहानीकार, पृ0 175
4. शिवरानी देवी प्रेमचन्द – प्रेमचन्द घर में, पृ0 265

इसलिए रोता है कि दर्द में कमी क्यों हो रही है, इसे अधिक कीजिये।[1] अर्थात प्रेमचन्द जी कुछ रोज और जीवित रहना चाहते थे कि और जो भी कमी बाकी रह चुकी है उनको अन्तिम समय में पूरा किया जा सके। मगर ईश्वर की दया ऐसी न थी कि उनको जीवित रख सकती। ईशवर स्वयं दयालु है और वे भी दयालुओं पर ही दया करता है। जो उसको मन से मानता है उसकी वो परीक्षा अपने ही हिसाब से लेता है। जैसा शरीर है वैसा ही आदमी काम भी करता है। कलमबाज के हाथ में 'पूस की रात' में फावड़ा दे दिया जाये तो मां का दूध याद आ जायेगा। प्रेमचन्द को समाज की व्यवस्था पर व्यंग्य करना आता था। उनकी विचार धाराओं का एक नया मोड़ था। प्रेमचन्द को 'पूस की रात' का कुछ भी अनुभव न था वो सारी जवानी में अपनी लिखायी–पढ़ाई में लगे रहे और बुढ़ापे में हिन्दी साहित्य जगत में अपनी कलम तोड़ने में जरा भी संकोच कर सके हैं। जब मैंने (शिवरानी देवी) देखा कि इस तरह वे (प्रेमचन्द) जाड़े के कपड़े नहीं बनवाते है तब मैंने उनके भाई साहब को रूपये दिये और कहा कि इनके (प्रेमचन्द) लिए आप कपड़े बनवा दें। तब बड़ी मुश्किल से आपने कपड़ा खरीदा। जब गर्म सूट बनकर आया तब आप पहनकर मेरे (शिवरानी देवी) पास आये और बोले – मैं सलाम करता हूं।[2] हमारा तजुर्बा तो यह है कि साक्षर (शिक्षित) होकर आदमी काईयां, बदनियत, कानूनी और आलसी हो जाता है। किसान इस लिए तबाह नहीं है कि उसके पास खेती तो है और केवल वह साक्षर नहीं है, बल्कि इसलिए कि जिन परिस्थितियों में उसे अपने जीवन का निर्वाह करना पड़ता है, उनमें से बड़ा विद्वान (चतुर) भी सफल नहीं हो सकता है। हास्य समाज के मैल के लिए साबुन का कार्य करता है। "दूसरों पर हंसना जितना आसन है उतना अपने ऊपर नहीं" हास्य एक प्रकार का प्रकाश उत्पन्न करता है जिससे बुराईयां रूपी अन्धकार नष्ट होता है।

---

1. लियाकत सिद्दीकी घासीपुरी–प्रसाद की असामान्य नारियां।
2. शिवरानीदेवी–प्रेमचन्द–प्रेमचन्द घर में– पृ0 272

दूसरों पर हंसने वाला मनुष्य उस उजाले में अपनी बुराईयों को भी देख सकता है। जिन परिस्थितियों पर हम दूसरों पर हंसते हैं, यदि आत्म निरीक्षण करके अपनी असंगतियों, दुर्बलताओं और दशाओं पर भी हंसे तो हमारा कल्याण हो सकता है।[1] अर्थात पूंजीवादी अथवा सामन्तवादी समाज व्यवस्था की वृत्ति यह थी कि दलित एवं पीड़ित जनता की ओर ध्यान न देकर उसके आर्तनाद की भी उपेक्षा करे। इसी कारण जन–समाज ने उनके अत्याचार के प्रति अपना विरोध प्रकट करना आरम्भ कर दिया तथा अर्थ संचय को अत्याचार करने का एक माध्यम घोषित किया। आज के समाज ने अपनी दुर्बलता का अनुभव प्राप्त कर लिया है उसके पिछड़े रहने में उसका और शिक्षित–मानव समाज का ही दोष है, क्योंकि सामन्तवादी व्यवस्था में वे सब छिन्न भिन्न थे। आज दलित मानव समाज को अपनी वस्तु स्थिति का ज्ञान हो गया।

यथार्थवादी चरित्रों को पाठकों के सामने उसके यथार्थ नग्न रूप में रख देता है। उसे इससे कोई मतलब नहीं कि सच्चरित्रता का परिणाम बुरा होता या कुचरित्रता अच्छा– उसके चरित्र अपनी कमजोरियां दिखाते हुए अपनी जीवन लीला समाप्त करते हैं। "यथार्थवादी (लेखक) हमारी (दलितों) दुर्बलताओं, हमारी विशेषताओं और क्रूरताओं का नग्न चित्रण होता है, और इस प्रकार यथार्थवादी हमको (दलितों) निराशवादी बना देता है, मानव चरित्र पर से हमारा विश्वास उठ जाता है। हमकों अपने चारों तरफ बुराई ही बुराई नजर आने लगती हैं।" इसके विपरीत आदर्शवाद –"हमें ऐसे चरित्रों से परिचित कराता है जिनके हृदय पवित्र होते हैं, जो स्वार्थ और वासना से रहित होते हैं, जो साधु प्रकृति के होते है। साधु तो भगवान के भक्त होते हैं । परन्तु प्रेमचन्द तो 'गोदान' तक आते–आते उनका गांधीवादी रूझान सीमित होता गया और मार्क्सवाद के प्रति उनका रूझान बढ़ता गया।[2] यद्यपि चरित्र व्यवहार कुशल नहीं होते, उनकी

1 . डा0 राधेश्याम गुप्ता–प्रेमचन्दोतर कहानी साहित्य, पृ0 242
2 . डा0 कृष्णमुरारि मिश्र– आद्यविम्ब और गोदान– पृ0 121

सफलता उन्हें सांसारिक विषयों में धोखा देती है, लेकिन कांइयेपन से उबे हुए प्राणियों के ऐसे सरल, ऐसे व्यवहारिक ज्ञान विहीन चरित्रों के दर्शन से एक विशेष प्रकार का आनन्द होता है।[1] 'पूस की रात' कहानी में भी यही यथार्थ व्यंग्य बनकर रह गया है। मानों 'हल्कू' (इस कहानी का पात्र) समाज को चुनौती दे रहा हो कि अब समाज की यह व्यवस्था और अधिक दिनों तक नहीं चल सकती। इस तरह विशुद्ध आदर्शवादी प्रेमचन्द (बिना मिलावट शुद्ध) अन्त में विशुद्ध याथर्थवादी बन जाते है। ऐसा हिन्दी जगत साहित्य में कम ही होता देखा गया है।[2] इस प्रकार से कायस्थ जाति हमेशा से ही अपने स्वार्थ के चक्कर में असहाय दलितों को ही अपना मोहरा बनाकर उनके जीवन की हर प्रकार की दुर्बलताओं को उछालकर कहानी में समाज का मजाक बनाया गया है कि हल्कू का खेत नील गायें चर (खा) जाती है। परन्तु वह वहां से उठ नहीं पाता। मैं (शिवरानी देवी) बोली – मैं भी नहीं चाहती कि दूसरे आपकी सेवा करें। यो लड़की–लड़का चाहे जो कर दे। कहिये तो मैं उनसे भी मनाकर दूं? तब प्रेमचन्द बोले – नहीं जी, ये तो अपने ही हैं।[3] प्रेमचन्द ने अपनी कलम के जादू से हल्कू के यहां कोई सन्तान पैदा नहीं करवायी। हल्कू को कोई सहायता देने वाला इस कहानी में नजर नहीं आता है। केवल उसकी धर्मपत्नी मुन्नी ही उसके ऊपर अपना गुस्सा करती है। खेत में हानि होने पर। यहां यह बात विचार योग्य है कि हल्कू की आयु 60–65 वर्ष के लगभग हो सकती हैं 'पूस की रात' जो एक प्रकार से घर से बाहर नहीं निकलने देती है। गांव की कहावत है 'पूस और घर में घूस' प्रेमचन्द ने तो पूस के माह में गर्म सूट पहनकर अपनी बेवा धर्मपत्नी को सलाम ठोंक दिया और खुश कर दिया और हल्कू बूढ़े गरीब किसान पर मुन्नी को गुस्से में अशुद्ध बातें कहलवा दी।

---

1. सुरेन्द्र आनन्द– प्रेमचन्द कहानीकार– पृ0 176
2. सुरेन्द्र आनन्द– प्रेमचन्द कहानीकार– पृ0 177
3. शिवरानीदेवी प्रेमचन्द – प्रेमचन्द घर में– पृ0 270

मगर यहां पर प्रेमचन्द का फाला बदला हुआ नजर आता है। पहले वे आदर्शवादी बनकर समाज के सामने उपस्थित होते हैं। फिर अन्त में यथार्थवादी नजर आ रहे है। मगर कहने और करने में जमीन – आसमान का अन्तर होता है। लिखना तो बहुत आसान है परन्तु समाज में रहकर चलना बड़ा कठिन कार्य है। इस संसार में–'बड़ी कठिन है डगर पनघट की' स्वयं तो प्रेमचन्द जाड़ों में अपने शरीर को ठन्डक से बचा रहे हैं और हल्कू को बिना कम्बल के बुझते हुए अलाव (आग की जगह) के पास राख को कुरेदकर अपनी ठन्डी देह को गर्माने लगता हैं यह विवशता गरीबी की ही है। अगर हल्कू के सन्तान होती तो प्रेमचन्द पूस की रात में हल्कू गरीब किसान को इतनी बड़ी उम्र में पूस के महीने में बिना गर्म कम्बल और बन्दूक के न दिखा सकते थे। अर्थात गर्म कम्बल उसका पुत्र भी हो सकता है और बन्दूक उसका धन माना जा सकता है। यह दोनों वस्तुएं मुंशी प्रेमचन्द जी के पास तो थी। परन्तु असहाय हल्कू किसान के पास न थी। यहीं कलम के जादू का कमाल है। किन्तु प्रेमचन्द जी को हल्कू पर तरस आ ही गया। उन्होंने ठंड के मौसम को देखते हुए एक झबरे कुत्ते को उनका साथी माना है। वे कुत्ता ही नील गायों से खेत की रखवाली करता है। मगर कुत्ता तो चोर, डाकू को देखकर भौंकता है, और होशियार कर देता है। मगर नील गायों के झून्डों को तो नहीं भगा सकता है। क्योंकि हल्कू भी तो उम्र के अनुसार कमजोर हो चुका है। परन्तु किसान तो अपनी खेती की हर हालत में देखभाल करता ही है। नुकसान पर कौन अपनी हंसी करता है। यह बात बिल्कुल असत्य ही मानी जा सकती है। किसान का खेत उसकी सन्तान के बराबर ही होता है। जिस प्रकार बच्चे की हर प्रकार से देखभाल की जाती है। उसी प्रकार से किसान अपने खेत की हर प्रकार से उधार–सुधार लेकर देखभाल करता है। जब तक पक्क कर या कटकर घर पर न आ जाये। प्रेमचन्द ने इसी कुत्ते के माध्यम से यथार्थ को चित्रित करने का

प्रयत्न किया है। खेत को रोंदा देखकर हल्कू प्रसन्न होता है।[1] यह वाक्य कितना सत्य है–कितना स्वाभाविक एवं कितना मनोवैज्ञानिकता लिए हुए है। जिसने अपने लड़को पर अपना हक न समझा हो और एक आदमी पर अपना सारा जीवन डाल चुका हो, और वह भी छोड़ कर चला जाये तो उसके जीवन में क्या बाकी रह जाता है? बस आखिर में उसके हाथ लगती है निराशा और दुर्भाग्य।[2] यह सारी 'पूस की रात' की कहानी 25 अगस्त सन् 1936 में लिखा है। जो कहानी का अन्त इसी ऊपर के वाक्य से होता है। शिल्पकार की तरह साहित्यकार का यथार्थवादी होना आवश्यक नहीं है, वह हो भी सकता है। 'मैं यथार्थवादी नहीं हूं।[3] अर्थात प्रेमचन्द कलम वाले हवा का रूख देखकर ही अपनी लेखनी को शुरू करते थे। उनको गरीब और दलितों से कोई सहानुभूति न थी। केवल वे 'बाबू वर्ग' वर्ग से अपनी सहानुभूति ही रखते थे। अर्थात क्लर्क वर्ग की स्थापना होती जा रही थी।[4] लेकिन मुंशी जी ने किसी भी साहित्य के क्षेत्र में दलितों के प्रति सहानुभूति का अपना कोई भी अच्छा कदम नहीं उठाया। परन्तु वो हमेशा दलितों की कमजोरियों और उनकी बुराईयों को ही अपने हिन्दी साहित्य की लेखनी के माध्यम से प्रस्तुत करते रहे हैं। यह दलितों का ही एक प्रकार से दुर्भाग्य ही कहा जाये तो बहुत ही कम है। मनुष्य जब अत्यधिक पीड़ित होता है तो समस्त सृष्टि उसे दुःखमय ही प्रतीत होती है। इसी दुःखमय अवस्था का निवारण करने के लिये मनुष्य प्रकृति का आश्रय खोजता है। अतः प्रकृति का मानवीकरण कर तथा उसका मानव से तादात्मय स्थापित कर मनोविश्लेषणवादी कथाकारों ने कहानियों में एक नवीन रूप को स्थान दिया है।[5] इस संसार के मानव जीवन के स्वप्निल (सोया हुआ,स्वपन

---

1. सुरेन्द्र आनन्द– प्रेमचन्द कटनीकार– पृ0 198
2. शिवरानी देवी प्रेमचन्द – प्रेमचन्द घर में– पृ0 261
3. सुरेन्द्र आनन्द– प्रेमचन्द कहानीकार– पृ029
4. नन्ददुलारे वाजपेयी– कथाकार प्रेमचन्द–प्र0स0. पृ0 572
5. डा0 राधेश्याम गुप्त– प्रेमचन्दोत्तर कहानी साहित्य– पृ0 126

देखना) चित्रों में चित्रण करने वाले मानव को यथार्थ के ठोस धरातल पर उतारने का प्रेमचन्द ने प्रयास किया है। इसी कारण कुछ आलोचकों ने साहित्य को छायावाद एवं रहस्यवाद की प्रतिक्रिया के रूप में माना है। जहां पर कहानियों में उच्चवर्ग–शासक अथवा, पूंजीवादी वर्ग को नायक के रूप में स्थान दिया जाता था, वहां शोषक, दलित एवं पतित वर्ग को आधार मानकर उसके दैनिक जीवन के कार्य–व्यापार को साहित्य का प्रमुख अंग स्वीकार किया गया। अतः एक सीमित वर्ग व्यक्तियों के स्थान पर जन–सामान्य की समस्याओं पर ध्यान को अधिक जोर लगाकर लिखा गया है। एवं उनका हल साहित्यिक अभिव्यक्ति के माध्यम से खोजने का प्रयास किया मगर कोई उन दलितों–पिछड़ों को न मिल सका है। साहित्य का एक मात्र उद्देश्य जन–सामान्य को उन्नति पर लाने का एक हथियार के रूप में पथ पर लाना हो गया था। अर्थात प्रेमचन्द की कमाई का एक रास्ता बन गया था। जैसा कि मुंशी जी ने दलितों और श्रमिक–किसान वर्ग के लोगों को पूंजीपति वर्ग एवं जमींदारी प्रथा के उन्मूलन आन्दोलन के विरूद्ध खड़ा किया है। इस प्रकार की कहानियों में मानव की समस्या के प्रकृत एवं कुत्सित रूप को ही स्थान दिया जाता रहा है, क्योंकि समाज के यथातथ्य रूप को चित्रण कर इसके दुर्गुणों एवं दूषित वातावरण नष्ट करने की उपेक्षा उस मानव समाज के नग्न चित्र के प्रति समाज में घृणा को फैलाना, विरोध एवं आक्रोश की भावना को इन्हीं मुंशी जी के कलम से जन्म देना प्रगतिशील–कहानीकारों का मुख्य उद्देश्य था।

प्रेमचन्द ने अन्त में हल्कू को किसान से गांव का मजदूर बनाकर स्वयं अपनी दृष्टि में और ग्राम्य समाज की नजर में तथा हल्कू की नज़र में उसका पतन हो हाता है। प्रेमचन्द ने दिखाया है कि अपने पतन से भी हल्कू प्रसन्न है।[1] इस प्रकार की

1 . डा0 रामबृक्ष– प्रेमचन्द और भारतीय किसान– पृ0 148

कहानी को पढ़कर भारतीय समाज किस प्रकार की धारणा प्राप्त कर सकता है। अतीत और वर्तमान में समाज में भी ऐसा कौन सा यौद्धा वीर होगा जो अपनी पराजय पर स्वयं हंसकर अपना जीवन व्यतीत कर ले। यह खूबी तो मुंशी जी के जीवन से भी सिद्ध नहीं होती है। जितना जीवन स्वयं का कांटो भरा उनके साहित्य के माध्यम द्वारा बताया जाता है। प्रेमचन्द एक भी स्थान पर अपने पूरे जीवन काल में स्थित नजर नहीं दिखलायी पड़ते हैं। ईश्वर ने कहा है कि गरीब के ऊपर हंसना अपने जीवन के उपर रोने जैसा है। न जाने कब समय करवट बदल ले।

"कुछ तो गुल खिलके बाहरे जां फिज़ा दिखला गये।

हसरत उन गुंचों पै है जो बिन खिले मुर्झा गये।।[1]

1. डा0 वेदप्रकाश अमिताम– डा0 श्री कृष्णवार्ष्णेय सर्जन एवं स्मरण– पृ0 220